6420

तित्थयर

मई १९९२
षोडश वर्ष : प्रथम अंक

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १६ : अंक १

मई १९९२

☐

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सो एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

अंतरीक्ष पार्श्व-स्तुति—
एक भौगोलिक खोज ३

'समयसार' के अनुसार आत्मा का
कर्तृत्व-अकर्तृत्व एवं
भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व १२

त्रिषष्टि शलाका पुरुष
चरित्र २५

संकलन ३०

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३१

तीर्थङ्कर, इलोरा, ७वीं सदी

अंतरीक्ष पार्श्व-स्तुति—एक भौगोलिक खोज

श्री कुन्दनलाल जैन

नवम्बर १९९१ में मुक्तागिरि में आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के दर्शनों का शुभ अवसर प्राप्त हुआ, उसी समय उनके संघस्थ ऐलक श्री अभयसागरजी महाराज ने उपर्युक्त स्तुति की पांडुलिपि की फोटो कॉपी दी, जो उन्हें रेवाड़ी से प्राप्त हुई थी। प्रति बड़े अस्पष्ट अक्षरों में लिखी है तथा कुछ पंक्तियाँ फोटो कॉपी करने वाले ने सीधे पृष्ठ मशीन पर न लगा पाने के कारण काट-सी दी हैं जिससे फोटो कॉपी और भी अधिक अपठनीय बन गई है। श्री ऐलक जी को कहीं से ज्ञात हो गया था कि मैं प्राचीन लिपि पढ़ लेता हूँ अतः उन्होंने वह फोटो कॉपी मुझे दी और उसे सुवाच्य पठनीय लिपि में रूपान्तरित करने को कहा। तत्काल तो उसे स्पष्ट रूप से नहीं पढ़ा जा सका, केवल स्तुति के रचयिता और लिपिकाल आदि मोटी-मोटी बातें उन्हें बता दी पर पूरी स्तुति को खोलकर स्पष्ट लिपि में रूपान्तरित करने के लिए मैं उसे घर ले आया, घर आकर इस पर बड़ा परिश्रम करना पड़ा और कई दिनों के बार-बार पठन और मनन के बाद उसे प्रस्तुत रूप में रूपान्तरित कर सका।

इस स्तुति में ४९ छन्द हैं, इसकी भाषा गुजराती राजस्थानी मिश्रित है। इसमें श्रीपुर के अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। श्रीपुर अब शिरपुर के नाम से प्रचलित है, यह महाराष्ट्र प्रान्त के अकोला जिले के वाशिम तालुका में स्थित एक छोटा सा ग्राम है जो "अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र" के नाम से विख्यात है। यहाँ रेल और सड़क दोनों ही मार्गों से पहुँचा जा सकता है। इसे गंगानरेश श्री पुरुष (७७६ ई०) ने बसाया था, यहाँ पर अन्तरीक्षमें स्थित भव्य पार्श्वनाथ की सातिशय महिमा के कारण ही गंगानरेश प्रभावित हुए थे। इस प्रतिमा माहात्म्य से प्रभावित हो आचार्य श्री विद्यानन्द (७७५-८४० ई०) ने "श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्र" की रचना की थी जो केवल तीस श्लोकों का है पर उससे उनके पाण्डित्य और विभिन्न मत-मतान्तरों के अगाध ज्ञान का पता चलता है। आप्त परीक्षा, अष्ट सहस्री जैसे उत्कृष्ट न्याय ग्रंथ के रचयिता यही थे। यहाँ राजा एल द्वारा बनवाये मन्दिर भी हैं। यहाँ खजुराहो की कलाकृतियों की भाँति पुरातत्व शिल्प के बेजोड़ पाषाण खण्डों में कायोत्सर्ग मुद्रा में जिनबिम्ब उत्कीर्ण हैं।

जहाँ भ० पार्श्वनाथ की सातिशय प्रतिमा विराजमान है वहाँ पहले एक

तालाब था जिसमें स्नान करने से दाद, खाज, कुष्ठ रोग दूर हो जाते थे। प्रतिमा इतने अन्तरीक्ष में विराजमान थी कि इसके नीचे से घोड़े पर बैठा सवार निकल जाता था या पनिहारिनें सिर पर घड़े रखे हुए निकल जाती थीं, पर काल-दोष के कारण उतना अन्तराल तो नहीं रहा फिर भी पतला धागा, रूमाल या कागज वगैरह अभी भी निकल सकता है। मुनिश्री मदनकीर्ति (१२०५ ई०) जो विजयपुर के राजा कुन्तिभोज की राज्यसभा में पहुँचे थे और उनके पूर्वजों का वर्णन किया था, जिसे उनकी पुत्री ने परदे के पीछे बैठकर नोट किया था, इन्हीं मदनकीर्ति ने अपनी "शासन-चतुस्त्रिंशतिका" नामक कृति में श्रीपुर का वर्णन निम्न छंद द्वारा किया है। इसमें अन्य क्षेत्रों का भी वर्णन है :

पत्रं यत्र विहायसि प्रविपुले स्थातुं क्षणं न क्षमं,
तत्राऽऽस्ते गुणरत्नरोहणगिरि यो देव देवो महान्।
चित्रं नाऽऽत्र करोति कस्य मनसो दृष्टः पुरे श्रीपुरे,
स श्री पार्श्व जिनेश्वरो विजयते दिग्वाससां शासनम ॥

आचार्य विद्यासागरजी ने इसका पद्यानुवाद निम्न प्रकार किया है :

पत्र टिके न जहाँ अधर में गुणरत्नों का गिरिवर हो,
कितना विस्मय किसे नहीं हो चलो देख लो शिरपुर को।
देवों के भी देव पार्श्व जिन अन्तरिक्ष में शान्त रहे,
युगों युगों तक दिगम्बरों का जिन शासन जयवंत रहे॥

प्रस्तुत स्तुति के रचियता श्री भावविजय वाचक हैं, अपने गुरुओं का उल्लेख करते हुए कवि लिखते हैं :

श्री विजयदेव गुरुराज आदित स गणधर गाजै।
श्री विजयप्रभुसूरि नाम कामसम रूप विराजै॥
गणधर दोय प्रणमीकरी सुण्यो पार्श्व अशरण शरण।
भावविजय वाचक भणै जयो देव जय जय करण॥ ४६॥

उपर्युक्त विजयप्रभु सूरिका समय विक्रम सं० १७१०-४८ बीच इतिहास में मिलता है। ये विजयदेव के शिष्य थे तथा भावविजय इनके प्रशिष्य तथा विजयप्रभु सूरि के शिष्य थे। इनकी किन्हीं साहित्यिक कृतियों का पता इतिहास में नहीं मिलता है। उपर्युक्त दोनों गणधरों (गुरुओं) का जीवन परिचय भी कृपाविजय गणि के शिष्य मेघविजय गणि ने अपने "दिग्विजय काव्य" में किया है जो सं० १७५५ के लगभग रचा गया था। प्रस्तुत स्तुति

की प्रति का लिपिकाल सं० १८७८ है अतः श्री स्तुतिकार भावविजय वाचक का समय सं० १७५५ से १८७८ के बीच होना चाहिए। प्रस्तुत प्रति की पुष्पिका निम्न प्रकार है : "इतिश्री अंतरीक पाश्र्व परमेश्वर स्तवन सम्पूर्णं। सं० १८७८ लिखितं गुलाब ऋषिजी जतीज्जयकरणजी का शिष्य सुंभममाद मध्ये लिखीअ स्तुति सुभंमस्तु श्री गुरुदेव सहाय पठनार्थं मोतीचंदज्जी जती।" इससे लिपिकार, उसका समय तथा स्थान तथा किसके लिए लिखी गई का पता चल जाता है। इस प्रति की लम्बाई २५ से० मी० तथा चौड़ाई ११ से० मी० है। इसमें आठ पत्र (१६ पृष्ठ) हैं, प्रत्येक पृष्ठ पर नौ-नौ पंक्तियाँ हैं तथा प्रत्येक पंक्ति में २२-२४ अक्षर हैं।

अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ स्तवन

अथ अंतरीक श्री पाश्र्व स्तुति लिख्यते :

सरसति मात माया करी आयो अविचल वाणी।
पुरिसादोणी पास जिन गास्युं गुणमणि खाणी ॥ १ ॥
अद्भुत कौतिक कलियुगे दीसराह अचंभ।
धरती अधर रहे सदा, अंतरीक थिरथंभ ॥ २ ॥
महिमा महिमंडल सबल, दिये अनोपम आज।
अवर देव सुता सवे जागे तूं जिनराज ॥ ३ ॥
एक जीभ कर किम कहु गुण अनन्त भगवंत।
को जीभ कर कौ कहै तोहि न आवे अंत ॥ ४ ॥
तु माता तुहि त पिता भ्राता तु ही जु बंधु।
मनधर मुझ ऊपर करो करुणा करुणासिंधु ॥ ५ ॥

छंद मंडली—कर करुणा करुणारस सागरा,
नितजागे निरमल गुण मण वय रागरा।
सुर गुरु अधिक अछै (क्षय) मत आगरा ॥ ६ ॥
काम कुंभ जिम काम तदायक, पद प्रण(र)मे सुर वर नर नायक।
मथत सुधर्म ति मन्मथ सायक, करम रिपु दल जिम ? पावक ॥ ७ ॥
नव निधि सिद्धि छै (है) तुम नामें, मनवांछित सुख संपति पामें।
जो प्रभु पद पंकज सिर पामें, वहुं सुर (ख) महि जा तस कांमे ॥ ८ ॥
बहुल बसें विवहारी व्रातं, वर सिरपुर बसुधा विख्यातं।
त्तिहां राजै जिनवर जग तातं, अंतरीक त्रिभुवन अवदातं ॥ ९ ॥

छंद छप्पय—अवदात जिहनो जगत जाणी, गुण बखाणै सुर घणी ।
परसाद प्रभुनो प्रगट परभव, पामियो प्रभु पद फणी ॥
महिमा वधारे विघन वारे करै सेवा अति घणी ।
प्रभु नाम लीनो रहै भीनो अवर देव सु अवगुणी ॥
नरनाथ जोडी हाथ जोड़ी (ज्योंहि) मान मोडी ईम कहै ।
प्रभुनाथ चरणे जी के सरणे रहते नीरप (नृप) दल है बलिज है ॥ १० ॥
उत्कट (उवटत) विकट संकट विकट ना (नी) वे ते बलि ।
भय आठ मोटा निपट खोटा दुरथि जाये टलि ॥ ११ ॥
छंद मंडली—जे रोग भयंकरा दुष्ट भगंदरा, कुष्ट पयनख सिख सहास ।
अती निबल मल ज्वर विषमज्वर जाय नास ॥
दीसे अति माठा बाल बूढ़ा चठा नाठा जाये तेह ।
तुम दरसन सामी शिवगति गामी चामीकर समदेह ॥ १२ ॥
जलनिधि जल गज्जै, प्रवहण भज्जै, वज्जै वाय कुवाय (यु) ।
थरहर तिहां धुज्जै हरीहर पुज्जै किज्जै बहुल उपाय ॥
मन महि कंपै, है है (हाय २) जंपै किणही किंपि न थाय ।
ईण अवसर भावै प्रभु ने ध्यावै पावै ते सुख थाय ॥ १३ ॥
झडपै तरु डाला पावक झा(ला) ला, काला धूम कलोल ।
उछलंता देखी, जाय उवेखी(षी) पंखी पडै दडोल ॥
पंथी जन नासै भरीया सासै त्रासै धूजे देह ।
पडिया तिम ठामै ते प्रभु नामें कुशल पामें गेह ॥ १४ ॥
... ... कोपै लोपै जे बलि लीह ।
धसमसतो आवै देखी धावै लपकावै दोय जीह (भ) ॥
बीहै जनजाता देखी राता लोयण तस विकराला ।
कीधै गुण ग्यानें प्रभु ने ध्यानें अहि थापै विसराला ॥ १५ ॥
पापै पग भरितरि, हेडै फिरता, करता अति उन्माद ।
घोटिक जिम छूटै अतीआ खूटै लूटै निपट निखाद ॥
वन मांहि पडिया, चौरे अडिया, अडवडियां आधार ।
ईंण अवसरि राखै कुण प्रभु पाखै भाषै वचन उदार ॥ १६ ॥
छंद छप्पय—मद मत्त मयंगल अतुल, वलधर ज्जास दरिसण मज्जण ।
केसरि सिंह अबोह, अति हैं मेह सम वड़ गज्जण ॥
विकराल काल कराला, कोपै सिंहनाद विमुक्कण ।
सुखधाम प्रभु तुम नाम लेता तेह सिंहनु ठुक्कण ॥

गललाट करतो मद्द झरतो कोपधर तो धावण।
भूप रोस रातो अधिक मातो अति उजातो आवण ।। १७ ।।
घर हाट फोडै, बंध तोडै, मान मोडै नृप तणो।
तुम नाम तें गज अजा थापे विस्य (विश्व) थापे तें घणो ।। १८ ।।
रण मांहि सू (शू) रा भिडैं पूरा, लोह चूरा चूरण।
गज्ज कुंभ भेदे, सीस छेदे, वहै लोंहा (लोहू—खून) पूरण ।।
दल देखि कंपै दिन जु जंपै, करै प्रबल पुकारण।
तुम सामा नामें तिण ठाम वरूं जय जय कारण ।। १९ ।।
भय आठ मोटा दुष्ट खोटा, जेम रोटा चूरण।
अश्वसेन घोटा तुम प्रसादें मन मनोरथ पूरण ।।
महि मांहि महिमा वधौ दिन दिन चंद्र ने सूरज जिसो।
जस जाप करतां ध्यान धरतां पास (र्श्व) जिनवर ने नमो ।। २० ।।

छंद मंडली—छाया पटल जाल सबि(ब) कांपै,
आंख्यां तेज अधिक बली(ल) आपै।
पन्नगपति परिताप बहु पूरै, प्रभु प्रसाद संकट सबि(ब) चूरै ।। २१ ।।
अलबधि (आपदा) अलगी जाये दुरै, लिखमी (लक्ष्मी) घर आवै वर पूरै।
महिमंडल मोटोत्तं देवा, चौसठि इन्द्र करै तुम सेवा ।। २२ ।।
त्रिभुवन ताहं रो तेज विराजै, जस परताप जग में छाजै,
केता देस कहुं वली नामें।
प्रभुनी कीरति जिन ठामें पुर पट्टण संवाहण गामें
सुणता नाम भविक सुख पामें ।। २३ ।।

छंद सारसी—अंग बंग कलिंग मरुधर मालवो मरहट्टण।
कास्मीर नेहछ (व्व) सं सवा(पा) दलख सोरट्ठण ।।
कामरु कुंकूण दमण देसे जपें तेरो जापण।
तिण देस अविचल प्रबल प्रतापै पास प्रगट प्रतापण ।। २४ ।।
लाटनें कर्णाट कान्नड मेद पाद मेवोत्तरा वलिनीट घाट बैटरा।
वागडि वछ कछ कुसातरा, सतलिंग ग ... ... ।। २५ ।।
...सगाड द्राविड़ चौड़ा नह महा मोटरा।
पंचाल जो बंगाल बंगस सवर वव्वर कोटरा
मुलतान मागध मगध देसे जपें तेरो जाप रे ।।२६।। तिण देस अविचल० ।।
कासी य केरल अनेको कई सूरसेन सुंदर मणा।
गंधार गुज्जर गंगजयणो वछि(व्व) यार वैदर्भणा।

कणवीर नें सौवीर देसे जपैं तेरो जाप जाप रे ।। तिण देस अवि० ।। २७ ।।
नमि आड लाड कुणाल कौसल बहुल जंगली जाणिए ।
खुरसाण रोम रोराक आरब (अरब) तुररक (तुर्क) वार्त्त बखाणियै ।
कुर (रु) अछ मछ विदेसे जपै तेरो जाप रे । तिणदेस अविचल० ।। २८ ।।
नेपाल नाहल अमल कुंत अयंलनाक ज्जलदेसरा ।
प्रतिकाल चिल्लल मयल सिंहल सिंधु देसरा ।।
(ष)खसखीन चीन सिलाण देसें जपै तेरो जाप रे । तिनदेस अवि० ।। २९ ।।

छंद छुप्पय—प्रतपै प्रबल प्रताप ताप संताप निवारण ।
दश दिशि देश विदेश जन भमतां सुख कारण ।।
रोग सोग भय सबी(भी) टलै मनवांछित भोगह ।
दोहग दुख दारिद्र दु(दू)र सवि(ब) टलै वियोगह ।।
स्वर्ग मृत्यु पाल (पाताल) में त्रिभुवन में प्रगटो सदा ।
पार्श्वनाथ परताप थी थाई अविचल संपदा ।। ३० ।।

छंद मंडलि—अविचल पद आमै थिर करि थापैं ।
ज्जग व्यापक जिन राजा उपद्रव सबि (ब) जाई ।।
सुर गुण गांई वसि थापै नर राज्जा ।
द्वीपे पर द्वीपे रिपु ने जीपै दीपै जिम दिन राज्जा ।।
पद पंकज पुज्जे प्रभु ने रीझे वांछित काज्जा ।। ३१ ।।
तुं छे मुझ नायक हुं तुझ पायक लायक तुज्झ समान ।
कुण छे जग मांहि साहिवाहिं राखै आप समान ।।
तुं ही जित दीसै विस्वा विसैं हियडो हीसैं (हर्ष) हेज्ज ।
देखूं हुं नयणै जंपूं वयणा निर्मल तुम गुण गेह ।। ३२ ।।
सिंदूर सुंडाला मद मत्त बाला दुंदाला दरबार ।
झूलै मन गमता रंगै रमता उछालंता बारंबार ।।
तुरकीतेज्जाला आगलिपाला जूझाला तरवार ।
झालानें दौडै होडा हेडै जोडै बहु परिवार ।। ३३ ।।
हयवर पाखरिया रथ ज्जोतरिया घुघरूना घमकार ।
सोवन चीतरिया नेज्जाधरिया असवार ।।
गज्ज बैठा चालै रिपु नें साले ल्यै लिखमी नोला नो(लखा) हार ।
वीरिधि (वृद्धि) पामें ते प्रभु नामें सफल करें अवतार ।। ३४ ।।

छंद आर्या—अवतार सार संसार मांहि तेह नरनो ज्जाणिए ।
धन कमाई धर्म थानक जेहनी लिखकी जाणिए ।। ३५ ।।

छंद दोहा—सुंदर रूप सुहामणो श्रवण सुणो नरनारि।
कोडी कर जोडी रहै दरसणने दरबारि ॥ ३६ ॥
छंद अर्धनाराच—प्रियंगुबन्न नालतन्न देख मन्न मोहरा।
सुनु (न) र सुरनु रथ अधिक्क योति सोहरा ॥
अमंद चंद वृंद थै कला कलाप दिप्परा।
सुरिंद कोटि कोटि थे जिजनंद ज्जोर ज्जप्परा ॥ ३७ ॥
अफूल फूल बाण कौक बाण तो न लगाणहु।
योध क्रोध योध वैरि मान छोडि मज्जणहु ॥
अदीनत्तसु दीनबंधु देही सुक्ख (क्ख) मगाणहु।
सरणि जुंमणि स्वामि कें चरणकु विलगाणहु ॥ ३८ ॥
सुपोति (सफेद) मोति योति थे सुदंत पांति (पंक्ति) दिप्परा।
गुलाल वीसलाल तुष्ट थे प्रवाल माल छिप्परा ॥
सुवास वास थे कपूर पूर मज्जरा।
दरिद्र पूरि चूरिकें प्रपूर मोरि आसरा ॥
अनाथ नाथ देई हाथ करो सनाथ दासरा ॥ ३६ ॥
कमठ हठ गज्जणो कुकर्म मर्म भज्जणो।
ज्जगज्जनाति रंजनो मद द्रुम प्रभंजनो ॥
कुमति मति मंज्जनो नयन युग्म खंज्जनो।
ज्जगत्त्रयं अगज्जनो ज्जयो पार्स निरंजनो ॥ ४० ॥
पास राह निज दासनी अवधारो अरदास।
नयने देखाडो दरस पूरण पूरो आस ॥ ४१ ॥
चकवो चाहे चित्त सूं दिनकर दरिसण (र्शं) मेव।
चतुर चकोरि चित्त सूं हुं चाहूं नितमेव ॥ ४२ ॥
निशि भर सूं (सो) ता नि (नीं) द में ठों दरिस (र्श) ण जु राज्ज।
परितष (प्रत्यक्ष) देखाडो दरस सफल करो मुझ काज्ज ॥ ४३ ॥
तुम दरिसण सुख संपदा, तुम दरिसण नवनिद्धि।
तुम दरिसण या पामाई सफल मनोरथ सिद्धि ॥४४॥
छंद—अंतरीक प्रभु अन्तर्यामी, दीजै दरिसण शिव गति गामी।
गुण केता कहिये तुम स्वामी, कहतां सरसति (सरस्वती)
पार न पामी ॥ ४५ ॥
कीयो छंद मंद मति सारु, हितकरि चित में घर ज्यों वारु (लक)।
बालक ज्जदवा तदवा बोले, माता नैं मनो अमृत तोलै ॥ ४६ ॥

कीयो कवित्त चित्त ने उल्लास, सांभलता सवि (ब) आपद नासै ।
संपद सगली आवै पास, भाव विजय भगतै ईम भासै ।। ४७ ।।
कवित्त कियो छंद आनंद वृंद मन मांहि आणी ।
सांभलतां सुखकंद चंद जिजम सीतल वाणी ।। ४८ ।।
श्री विजयदेव गुरु राज आदितस गणधर गाजै ।
श्री विजयप्रभुसूरि नाम काम सम रूप विराजै ।।
गणधर दोय प्रणमीकरी सुण्यो पार्स अशरण शरण ।
भाव विजयवाचक भणै जयो देव जय जय करण ।। ४९ ।।

इतिश्री अंतरीक पार्श्व परमेश्वर स्तवन सम्पूर्ण । संवत् १८७८ । लिखतं गुलाब ऋषिजी, ज्जती ज्जयकरणजी का शिष्य सुंभम माढ़ मध्ये लिखी । अस्तुति शुभमस्तु । श्री गुरुदेव सहाय । पठनार्थं मोतीचंदजी ज्जती ।।

यद्यपि स्तुति बहुत ही सामान्य है, भक्ति भाव का प्रदर्शन राजस्थानी गुजराती मिश्रित हिन्दी शब्दों में लिखा गया है तथा भाव भाषा शैली भी सामान्य स्तुति परक है । इसमें छन्द २४ से २९ तक के छः छन्दों में जो १२४ देशों के नाम दिये हैं वे भौगोलिक अनुसंधान की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं । स्व० डॉ० वासुदेवशरणजी अग्रवाल को सन् १९६२ से पूर्व तक केवल ९८ देशों की सूची के रूढ़ होने का ज्ञान था पर जब उन्होंने राजस्थान सूची भाग चौथा के पृष्ठ ६७१ पर ११९ देशों के नाम देखे तो भूमिका लिखते हुए बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और इन देशों के अनुसंधान की ओर पाठकों को प्रेरित किया पर जब मैंने प्रस्तुत स्तुति में उल्लिखित देशों की सूची का राजस्थान सूची भाग ४ के देशों की सूची से मिलान किया तो केवल तीस देशों के नाम दोनों में समान है, ५२ देशों के नाम इस स्तुति में उससे भिन्न हैं इस स्तुति के देशों की संख्या रा० सू० की संख्या से और अधिक आगे बढ़ जाती है और कुल देशों की संख्या लगभग १४१ के करीब हो जाती है जो इतिहास और भूगोल के अनुसंधानकर्त्ताओं को और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है ।

यद्यपि काल-परिवर्तन और भाषा-प्रभाव के कारण बहुत-से देशों के नाम लुप्त हो गये हैं या बदल गये हैं जिनका अनुसंधान करने पर भी कहीं भी अता-पता नहीं चलता है । श्री भावविजयजी वाचक भक्ति के आवेश में इतने देशों के नाम लिख गये जहाँ के निवासी आकर पार्श्व प्रभु की वंदना करते हैं पर यथार्थ में कवि अपने भौगोलिक ज्ञान को ही प्रदर्शित करना चाहते हैं ।

पर यह तो निर्विवाद सत्य है कि श्रीपुर (शिरपुर) अपने समय में अपनी महिमा एवं अतिशय के लिए विश्वविख्यात था, इसीलिए विभिन्न देशों के लोग प्रभु-दर्शन के लिए आया करते थे, इससे लोगों की मनोकामनाएँ फलती-फूलती थीं। कवि ने तो भक्ति के आवेश में अथवा अपना भौगोलिक ज्ञान प्रकट करने के लिए इतने देशों के नामों का उल्लेख कर दिया पर अब हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उनका अनुसंधान कर इतिहास और भूगोल की बहुमूल्य धरोहर को समृद्ध और सार्थक बनावें। लेख के विस्तार भय के कारण राजस्थान भाग ४ पृ० ९७१ की सूची नहीं दे पा रहे सो कृपालु अनुसंधानकर्त्ता उसे देखकर परस्पर मिलान कर भौगोलिक और ऐतिहासिक ज्ञान की अभिवृद्धि करें। उपर्युक्त राजस्थान सूची डॉ० कस्तूरचंदजी कासलीवाल ने तैयार की है जो सन् १९९२ में प्रकाशित हुई थी।

'समयसार' के अनुसार आत्मा का कर्तृत्व-अकर्तृत्व एवं भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व

डा० श्रीप्रकाश पाण्डेय

ईसा की प्रथम शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दक्षिण भारत के कोण्डकुन्द नामक स्थल पर अवतीर्ण हुये आचार्य कुन्दकुन्द का दिगम्बर जैन परम्परा के आचार्यों में अप्रतिम स्थान है। उनकी महत्ता इसी प्रमाण द्वारा सिद्ध हो जाती है कि दिगम्बर परम्परा के मङ्गलाचरण में उनका स्थान गौतम गणधर के तत्काल पश्चात् आता है।[1] दक्षिण भारत के चार दिगम्बर संघों में से तीन का कुंदकुंदान्वय कहा जाना इसी तथ्य का प्रतिपादक है। कुंदकुंदाचार्य की गणना उन शीर्षस्थ जैन आचार्यों में की जाती है जिन्होंने आत्मा को केन्द्र-बिन्दु मानकर अपनी समस्त कृतियों का सृजन किया। उनकी कृतियों में से प्रमुख तीन पंचास्तिकाय, प्रवचनसार एवं समयसार का जैन आध्यात्मिक ग्रन्थों में वही स्थान है जो प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता) का वेदान्त दर्शन में है। प्रस्तुत निबन्ध में हमारा अभीष्ट इन तीनों रचनाओं में से 'समयसार' के अनुसार आत्मा के कर्तृत्व-भोक्तृत्व की विवेचना है।

समयसार आत्मकेन्द्रित ग्रन्थ है। अमृतचन्द्र स्वामी ने 'समय' का अर्थ 'जीव' किया है—'टङ्कोत्कीर्णचित्स्वभावो जीवो नाम पदार्थः स समयः। समयत एकत्वे युगपज्जानाति गच्छति चेति निरुक्तेः'[2] अर्थात् टङ्कोत्कीर्ण चित्स्वभाववाला जो जीव नाम का पदार्थ है, वह समय कहलाता है। जयसेनाचार्य ने भी 'सम्यग् अयः बोधो यस्य भवति स समयः आत्मा' अथवा 'समं एकभावेनायनं गमनं समयः'[3] इस व्युत्पत्ति के अनुसार समय का अर्थ आत्मा किया है। स्वयं आचार्य कुन्दकुन्द ने निर्मल आत्मा को 'समय' कहा

---

१ मङ्गलम् भगवान वीरो मङ्गलम् गौतमो गणी।
मङ्गलम् कुन्दकुन्दार्यः जैन धर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥
कुन्दकुन्दाचार्य की प्रमुख कृतियों में दार्शनिक दृष्टि, डा० सुषमा गांग, प्रस्तावना, पृ० ३१, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली/वाराणसी, १९८२

२ समयसार, पं० पन्नालाल द्वारा सम्पादित, प्रस्तावना, पृ० १७, गणेश-प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी, वी० नि० सं० २५०१

३ समयसार तात्पर्यवृत्ति, पृ० ५

है—'समयो खलु णिम्मलो अप्पा ।[४]' अतः समयसार का अर्थ है त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव अथवा सिद्धपर्याय आत्मा। दूसरे शब्दों में आत्मा की शुद्धावस्था ही समयसार है एवं इसी शुद्धावस्था का विवेचन इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है।

आत्मा की अवधारणा जैनदर्शन में प्रमुख एवं मौलिक है। जैनदर्शन में आत्मा की सिद्धि प्रत्यक्ष और अनुमानादि सबल अकाट्य प्रमाणों द्वारा की गई है। श्वेताम्बर आगम आचारांगादि में यद्यपि स्वतन्त्र रूप से तर्कमूलक आत्मास्तित्व साधक युक्तियाँ नहीं हैं फिर भी अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनसे आत्मास्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। आचारांग के प्रथमश्रुतस्कन्ध[५] में कहा गया है कि जो भवान्तर में दिशा-विदिशा में घूमता रहता है वह "मैं" हूँ। यहाँ "मैं" आत्मा के लिये आया है। दिगम्बर आम्नाय के षट्खण्डागम में आत्मा का विवेचन है किन्तु आत्मास्तित्व साधक स्वतन्त्र तर्कों का अभाव है। दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने 'समयसार' में आत्मा का विशद विवेचन किया है।

आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में आचार्य कुन्दकुन्द का मत है कि आत्मा स्वतःसिद्ध है। अपने अस्तित्व का ज्ञान प्रत्येक जीव को सदैव रहता है—

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हि जीविदो पुव्वं।
सो जीवो ते पाणा पोग्गल दव्वेहिं णिवन्ता ॥[६]

जो इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इन चार प्राणों से जीता था, जीता है, और जीएगा, वह जीव द्रव्य है और चारों प्राण पुद्गल द्रव्य से निर्मित हैं। पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि[७] में आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि करते हुए कहा है कि जिस प्रकार यन्त्र प्रतिमा की चेष्टायें अपने प्रयोक्ता के अस्तित्व का ज्ञान कराती हैं उसी प्रकार प्राण आदि कार्य भी क्रियावान आत्मा के साधक हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रकारान्तर से आत्मा को 'अहं' प्रतीति द्वारा ग्राह्य कहा है। 'जो चैतन्य आत्मा है, निश्चय से वह मैं (अहं)

---

४ रयणसार, कुन्दकुन्दाचार्य, सम्पा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, गाथा १५३, पृ० १९४

५ आचारांग, १।१।१।४

६ प्रवचनसार, गाथा २।५५, पृ० १८९, सम्पा० ए० एन० उपाध्ये, श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला, अगास, १९६४

७ सर्वार्थसिद्धि, ५।१९, पृ० १६६, सम्पा० जगरूप सहाय, भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता, वि० सं० १९८५

हूँ, इस प्रकार प्रज्ञा द्वारा ग्रहण करने योग्य है और अवशेष समस्त भाव मुझसे परे हैं, ऐसा जानना चाहिए।'[८] इस प्रकार आत्मा स्वतःसिद्ध है।

आत्मस्वरूप का विवेचन समयसार में आचार्य कुंदकूंद ने दो दृष्टियों से किया है : पारमार्थिक दृष्टिकोण एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण। दृष्टिकोण को जैनदर्शन में नय कहा गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से नय दो प्रकार के होते हैं—(१) निश्चय और (२) व्यवहार नय। पारमार्थिक दृष्टि ही निश्चय नय है। कुंदकुंद ने निश्चय नय को भूतार्थ,[९] परमार्थ,[१०] तत्त्व,[११] एवं शुद्ध[१२] कहा है। निश्चय नय वस्तु के शुद्ध स्वरूप का ग्राहक अर्थात् भेद में अभेद का ग्रहण करने वाला और व्यवहार नय को अभूतार्थ अथवा वस्तु के अशुद्ध स्वरूप का ग्राहक कहा गया है।[१३] आत्मा को शुद्ध स्वरूप का विवेचन शुद्ध निश्चय से (अर्थात् जो शुद्ध वस्तु है उसमें कोई भेद न करता हुआ, एक ही तत्त्व का कथन शुद्ध निश्चय करता है) एवं उसके अशुद्ध स्वरूप का विवेचन व्यवहार नय से (अर्थात् अशुद्ध निश्चय नय की दृष्टि से कथन करता है)। शुद्ध स्वरूप का विवेचन कुंदकुंद ने भावात्मक और अभावात्मक दोनों दृष्टियों से किया है। भावात्मक पद्धति में उन्होंने बताया है कि आत्मा क्या है? और निषेधात्मक पद्धति में बताया है कि बौद्ध दर्शन की भाँति पुद्गल उसकी पर्यायें तथा अन्य द्रव्य आत्मा नहीं हैं।

निश्चय तथा व्यवहार नय के माध्यम से आत्मा का विवेचन करते हुये आचार्य ने कहा है कि निश्चय नय के अनुसार आत्मा चैतन्य-स्वरूप तथा एक है, वह बंधविहीन, निरपेक्ष, स्वाश्रित,अचल, निस्संग, ज्ञायक एवं ज्योति-मात्र है।[१४] निश्चय नय की दृष्टि से आत्मा न प्रमत्त है न अप्रमत्त है और न ज्ञानदर्शनचारित्र स्वरूप है।[१५] वह तो एकमात्र ज्ञायक है। वह अशेष

---

८ समयसार, गाथा २९७

९ वही, गथा ११

१० वही, गाथा १५६

११ वही, गाथा २९

१२ वही, गाथा ११

१३ वही, गाथा ११

१४ वही, गाथा १४-१५

१५ ण वि होदि अपमत्तो वा पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति शुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव ॥ समयसार, ६

द्रव्यान्तरों से तथा उसके निमित्त से होने वाले पर्यायों से भिन्न शुद्ध द्रव्य है। आत्मा अनन्य शुद्ध एवं उपयोग स्वरूप है। वह रस, रूप और गन्धरहित, अव्यक्त चैतन्यगुण युक्त, शब्दरहित, चक्षु इन्द्रिय आदि से अगोचर, अलिंग एवं पुद्गलाकार से रहित है। वह शरीर संस्थान, संहनन, राग, द्वेष, मोह, प्रत्यय, कर्म, वर्ग, वर्गणा, अध्यवसाय, अनुभाग, योग, बंध, उदय, मार्गणा स्थितबंध, संक्लेश स्थान से रहित है।[१६] आत्मा निर्ग्रन्थ, वीतराग व निःशल्य है।[१७] परमात्मप्रकाश में शुद्ध आत्मा के स्वरूप को बताते हुए कहा गया है कि न मैं मार्गणा स्थान हूँ, न गुणस्थान हूँ, न जीवसमास हूँ, न बालक-वृद्ध एवं युवा-वस्था रूप हूँ।[१८] समयसार में आचार्य ने कहा है कि निश्चय से मैं हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन ज्ञानमय एवं सदाकाल अरूपी हूँ, अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा कुछ नहीं है।[१९] निश्चय नय से यह आत्मा अनादिकाल से अप्रतिबुद्ध हो रहा है, इसी अप्रतिबुद्धता के कारण वह 'स्व' और 'पर' के भेद से अनभिज्ञ है। आत्मा है तो आत्मा में ही परन्तु अज्ञानी उसे शरीरादि पर पदार्थों में खोजकर दुःख का पात्र बनता है। नियमसार में भी आचार्य ने कहा है कि निश्चय नय से आत्मा जन्म, जरा-मरण एवं उत्कृष्ट कर्मों से रहित, शुद्ध ज्ञान, दर्शन, सुखवीर्य स्वभाव वाला, नित्य अविचल रूप है।[२०] अतः निश्चय नय से आत्मा चैतन्य उपयोग स्वरूप,[२१] स्वयंभू, ध्रुव, अमूर्तिक, सिद्ध अनादि घन अतीन्द्रिय, निर्विकल्प एवं शब्दातीत है। समस्त षट्कारचक्र की प्रक्रिया भेद दृष्टि या व्यवहार नय से है, अभेद दृष्टि में इसका अस्तित्व ही नहीं है।

व्यवहार नय की दृष्टि से आचार्य ने अशुद्ध संसारी आत्मा का विवेचन किया है। इस दृष्टि से अध्यवसाय आदि कर्म से विकृत भावों को आत्मा कहा है। जीव के एकेन्द्रियादि भेद, गुणस्थान, जीव समास एवं कर्म के संयोग से

---

१६ समयसार, ५०-५५; नियमसार, ३।३८-४६, ५।७८ एवं ८०

१७ नियमसार, ३।४४, ४८

१८ परमात्मप्रकाश, गाथा ६१, योगिन्दु, सम्पा० ए० एन० उपाध्ये, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, १९६०

१९ समयसार, ७८

२० नियमसार, १७७-७८

२१ पंचास्तिकाय, १६, १०९, १२४; प्रवचनसार ३५; भावपाहुड़ ६२; सर्वार्थसिद्धि, २।८

उत्पन्न गौरादि वर्ण तथा जरादि अवस्थाएँ और नर-नारी आदि पर्यायें अशुद्ध आत्मा की होती हैं।[२२] व्यवहार नय दृष्टि से ही ज्ञान, दर्शन और चारित्र आत्मा के कहलाते हैं। आत्मा चैतन्य स्वरूप, प्रभुकर्ता, देहप्रमाण एवं कर्म-संयुक्त है।[२३] व्यवहार नय से आत्मा शुभ-अशुभ कर्मों का कर्ता एवं सुख-दुःखादि फलों का भोक्ता है। व्यवहार से ही जीव व शरीर को एक समझा जाता है निश्चय नय से जीव व शरीर कभी एक नहीं हो सकते। शरीर के साथ आत्मा का एक क्षेत्रावगाह होने से शरीर को आत्मा कहने का व्यवहार होता है। जैसे—चाँदी व सोने को गला देने पर एक पिण्ड हो जाता है पर वस्तुतः दोनों अलग होते हैं, उसी प्रकार आत्मा और शरीर इन दोनों के एक क्षेत्र में अवस्थित होने से दोनों की जो अवस्थायें हैं यद्यपि भिन्न हैं तथापि उनमें एकपन का व्यवहार होने लगता है। इस प्रकार व्यवहार नय से आत्मा शुभ-अशुभ कर्मों का कर्त्ता एवं सुखादि फलों का भोक्ता है।

आत्मा का कर्तृत्व-अकर्तृत्व :

न्याय-वैशेषिक, मीमांसा व वेदान्त की तरह जैन दार्शनिकों ने भी आत्मा को शुभ-अशुभ, द्रव्य-भाव कर्मों का कर्त्ता व भोक्ता माना है। सांख्य दर्शन एक ऐसा दर्शन है जो आत्मा को कर्त्ता तो नहीं मानता पर भोक्ता मानता है। अन्य भारतीय दार्शनिकों की अपेक्षा जैन दार्शनिकों की यह विशेषता रही है कि वे अपने मूलभूत सिद्धान्त स्याद्वाद के अनुसार आत्मा को कथंचित् कर्त्ता व कथंचित् अकर्त्ता मानते हैं।

जैनदर्शन की परम्परागत मान्यता के अनुरूप आचार्य कुन्दकुन्द भी आत्मा को कर्त्ता एवं भोक्ता निर्दिष्ट करते हैं। उन्होंने आत्मा के कर्तृत्व-भोक्तृत्व पर तीन दृष्टियों से विचार किया है—निश्चय नय, अशुद्धनिश्चय नय एवं व्यवहार नय। इन तीनों दृष्टियों से विचार करने पर आत्मा में कर्तृत्व-अकर्तृत्व एवं भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व दोनों परिलक्षित होता है। जिसे हम आने वाली पंक्तियों में देखेंगे।

कुन्दकुन्दाचार्य के अनुसार आत्मा को कर्त्ता कहने का तात्पर्य यह है कि वह परिणमनशील है। 'यः परिणमति सः कर्त्ता'[२४] अन्य द्रव्यों की भाँति

---

२२ समयसार, ५६-६७

२३ पंचास्तिकाय, २७, सम्पा० मनोहर लाल परमश्रुत प्रभावक मंडल, बम्बई, १६०४

२४ समयसार आत्मख्याति टीका, गाथा ८६, कलश, ५१

आत्मा में भी स्वभाव व विभाव दो पर्याय माने गये हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य ये आत्मा के स्वभाव गुण पर्याय हैं। पुद्‌गल या पुद्‌गलकर्मों के संयोग के कारण आत्मा में होने वाले पर्याय विभाव पर्याय कहलाते हैं जैसे—मनुष्य, नारकीय, तिर्यञ्च आदि गतियों में आत्म-प्रदेशों का एकाकार होना विभाव पर्याय है। चूँकि व्यवहार व अशुद्ध नय की अपेक्षा ही आचार्य कुंदकुंद आत्मा में कर्तृत्व मानते हैं इसलिये उनके अनुसार व्यवहार नय की अपेक्षा आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म एवं घटपटादि कर्मों का कर्त्ता है और अशुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से भावकर्मों का कर्त्ता है। समयसार[२५] में आचार्य ने कहा है कि व्यवहार नय से आत्मा घट, पट, रथ आदि कार्यों को करता है, स्पर्शनादि पंचेन्द्रियोंको करता है, ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मों तथा क्रोधादि भावकर्मों को करता है। व्यवहार नय से जीव ज्ञानावरणादि कर्मों, औदारिकादि शरीर एवं आहार पर्याप्तियों के योग्य पुद्‌गल रूप नोकर्मों और बाह्यपदार्थ घटपटादि का कर्त्ता है किन्तु अशुद्ध निश्चय नय से रागद्वेषादि भावकर्मों का कर्ता है।[२६] पंचास्तिकाय की तात्पर्य वृत्ति[२७] में भी कहा गया है कि अशुद्ध निश्चय नय की दृष्टि में शुभाशुभ परिणामों का परिणमन होना ही आत्मा का कर्तृत्व है। अतः व्यवहारनय या उपचार से ही आत्मा ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्ता है। कर्मबन्ध का निमित्त होने के कारण उपचार से कहा जाता है कि जीव ने कर्म किये हैं, उदाहरणार्थ—सेना युद्ध करती है किन्तु उपचार से कहा जाता है कि राजा युद्ध करता है, उसी प्रकार आत्मा व्यवहार दृष्टि से ही ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्त्ता कहलाता है।[२८] प्रवचन-सार की टीका में कहा गया कि आत्मा अपने भावकर्मों का कर्त्ता होने के कारण उपचार से द्रव्य कर्म का कर्ता कहलाता है,[२९] जिस प्रकार लोक रूढ़ि है कि कुम्भकार घड़े का कर्ता व भोक्ता होता है उसी प्रकार रूढ़िवश आत्मा

---

२५ समयसार, ९९

२६ द्रव्य संग्रह, टीका नेमिचन्द्र, सम्पा० दरबारी लाल कोठिया, श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थ माला १६, वाराणसी, १९६६, पृ० ८; श्रावकाचार (वसुनन्दि), ३५

२७ चूलिका, गाथा ५७

२८ समयसार, १०१-८१

२९ प्रवचनसार-तत्त्वदीपिका टीका, २९

कर्मों का कर्ता व भोक्ता है।[30] पर और आत्मद्रव्य के एकत्वाध्यास से आत्मा कर्ता होता है।[31] जीव (आत्मा) और पुद्‌गल में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

किसी भी क्रिया के सम्पादित होने में उपादान-उपादेय एवं निमित्त-नैमित्तिक कारण मुख्य हैं। जो स्वयं कार्यरूप परिणमन करता है वह उपादान कहलाता है और जो कार्य होता है वह उपादेय कहलाता है, जैसे—मिट्टी घटाकार में परिणित होती है, अतः वह घट का उपादान है और घट उसका उपादेय है। यह उपादान-उपादेय भाव सदा एक ही द्रव्य में बनता है क्योंकि एक द्रव्य अन्य द्रव्य रूप परिणमन त्रिकाल में भी नहीं कर सकता।[32] उपादान को कार्यरूप में परिणित करने वाला या परिणित करने में जो सहायक है, वह निमित्त कहलाता है, और उस निमित्त से उपादान में जो कार्य निष्पन्न हुआ है वह नैमित्तिक कहलाता है—जैसे कुम्भकार तथा उसके दण्ड, चक्र, चीवर आदि उपकरणों से मिट्टी में घटाकार परिणमन हुआ तो यह सब निमित्त हुये व घट नैमित्तिक हुआ। यहाँ निमित्त व नैमित्तिक दोनों पुद्‌गल द्रव्य के अन्दर निष्पन्न हैं और जीव के रागादिभावों का निमित्त पाकर कर्मवर्गणा रूप पुद्‌गल द्रव्य में परिणमन हुआ। जब उपादान उपादेयभाव की अपेक्षा विचार होता है तब चूँकि कर्मरूप परिणमन पुद्‌गल रूप उपादान में हुआ है, इसलिए इसका कर्त्ता पुद्‌गल ही है, जीव नहीं। किन्तु जब निमित्त-नैमित्तिक भाव अपेक्षा विचार होता है तब जीव के रागादिक भावों का निमित्त पाकर पुद्‌गल में कर्मरूप परिणमन हुआ है, कुम्भकार के हस्तव्यापार का निमित्त पाकर घट का निर्माण हुआ है इसलिए इनके निमित्त क्रमशः रागादिक भाव व कुम्भकार हैं। इसी प्रकार द्रव्य कर्मों की उदयावस्था का निमित्त पाकर जीव में रागादिक परिणति हुई है इसलिए इस परिणति का उपादान कारण जीव स्वयं है और निमित्त कारण द्रव्य कर्म की उदयावस्था है अर्थात् पुद्‌गल द्रव्य जीव के रागादिक परिणामों का निमित्त पाकर कर्मभाव को प्राप्त होता है, इसी तरह जीव द्रव्य भी पुद्‌गलकर्मों के विपाककाल रूप निमित्त को पाकर रागादिभाव रूप परिणमन करता है। ऐसा निमित्त-

---

३० समयसार आत्मख्याति टीका, ८४

३१ समयसार, ६७

३२ नो भौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत, समयसार, गाथा ८६ पर अमृतचन्द्र टीका, पृ० १०

नैमित्तिक सम्बन्ध होने पर भी जीव, द्रव्य, कर्म में किसी गुण का उत्पादक नहीं होता अर्थात् पुद्गल द्रव्य स्वयं ज्ञानावरणादि भाव को प्राप्त होता है। इसी तरह कर्म भी जीव में किन्हीं गुणों का उत्पादक नहीं अपितु मोहनीय आदि कर्म के विपाक को निमित्त पाकर जीव स्वयंमेव रागादि रूप परिणमन करता है। अतः जीव अपने भावों का कर्त्ता है पुद्गल कर्मकृत सब भावों का नहीं।[33] ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्त्ता पुद्गल है। इस प्रकार शुद्ध निश्चय की दृष्टि से वह परभाव का अकर्त्ता है पर अशुद्ध निश्चय की दृष्टि से वह अपने अशुद्धभाव का कर्त्ता है। आत्म परिणामों के निमित्त से कर्मों को करने के कारण आत्मा व्यवहार नय से कर्त्ता कहलाता है।[34]

सांख्यसम्मत अकर्तृत्ववाद का खण्डन :

भारतीय दर्शनों में सांख्य ही एक ऐसा दर्शन है जो आत्मा को अकर्ता मानते हुये भी भोक्ता मानता है। सांख्यवादियों का मत है कि पुरुष अपरिणामी एवं नित्य है इसलिए वह कर्ता नहीं हो सकता; पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ कर्म प्रकृति के हैं इसलिये प्रकृति ही कर्ता है।[35] अन्य दार्शनिकों की तरह जैन दार्शनिकों ने भी सांख्यों के इस सिद्धान्त की समीक्षा करते हुये कहा है कि यदि पुरुष अकर्ता है और पुरुष प्रकृति द्वारा किये गये कर्मों का भोक्ता है तो ऐसे पुरुष की परिकल्पना ही व्यर्थ है।[36] कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि यदि पुरुष को अकर्ता माना जाय और समस्त कार्यों को करने वाली जड़ प्रकृति को माना जाय तो प्रकृति हिंसा करने वाली होगी तथा वही हिंसक कहलायेगी, जीव असंग व निर्लिप्त है इसलिए जीव हिंसक नहीं होगा, ऐसी स्थिति में वह हिंसा के फल का भागी भी नहीं होगा। जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार प्रत्येक जीव अपने परिणामों से दूसरे की हिंसा करता है, फलतः वह जीव दूसरे की हिंसा के फल का भागी होता है।[37] इस प्रकार सांख्यमत में जड़ प्रकृति कर्ता हो जायेगी

---

[33] पंचास्तिकाय, ६१ ; प्रवचनसार, ६२ ; समयसार, १२६

[34] पंचास्तिकाय तत्त्वदीपिकाटीका, २७

[35] सांख्यकारिका, ११, १६, २०, ५७, २६, ४७, ४६, ईश्वरकृष्ण, सम्पा० रमाशंकर त्रिपाठी, वाराणसी, १६७०

[36] श्रावकाचार (अमितगति), ४।३५

[37] समयसार, ३३८-३६

तथा सभी आत्मायें अकर्ता हो जायेंगी। जब आत्मा में कर्तृत्व नहीं रहेगा तब उसमें कर्मबन्ध का अभाव हो जायेगा। कर्मबन्ध का अभाव हो जाने से संसार का अभाव हो जायेगा, एवं संसार न होने से आत्मा को सदा मोक्ष होने का प्रसंग आ जायेगा जो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। अतः सांख्य की तरह आचार्य कुन्दकुन्द आत्मा को सर्वथा अकर्त्ता नहीं मानते क्योंकि भेदज्ञान के पूर्व अज्ञानदशा में आत्मा रागादिभावों का कर्ता है और भेदज्ञान के अनन्तर वह एकमात्र ज्ञापक रह जाता है।

बौद्धों के क्षणिकवाद का खण्डन :

आत्मकर्तृत्ववाद के प्रसंग में कुन्दकुन्दाचार्य ने क्षणिकवाद का खण्डन किया है। क्षणिकवादी बौद्धों के अनुसार 'यत् सत् तत् क्षणिकम्' इस सिद्धान्त के अनुरूप जो वस्तु जिस क्षण में वर्तमान है, उसी क्षण उसकी सत्ता है, ऐसा मानने पर वस्तु के क्षणिक होने से, जो कर्ता है वही भोक्ता नहीं होगा क्योंकि वह तो उसी क्षण विनष्ट हो गया। इस प्रकार अन्य ही कर्ता और अन्य ही भोक्ता सिद्ध होगा जो कि प्रत्यक्ष विरुद्ध होने से मिथ्या है। कुन्दकुन्दाचार्य ने द्रव्य की पर्याय रूप अवस्थाओं 'क्षणिक किंवा अनित्य' स्वीकार करके भी उन पर्यायों में सर्वदा विद्यमान रहने वाले गुण के कारण द्रव्य की नित्य सत्ता स्वीकार की है। यदि ऐसा माना जाय तो पर्यायार्थिक दृष्टि से आत्मा में कर्तृत्व-भोक्तृत्व के समय अन्य पर्याय का कर्तृत्व एवं अन्य पर्याय का भोक्तृत्व सम्भव है जैसे मनुष्य पर्याय में किये गये शुभ कर्मों का फल देव पर्याय में होगा किन्तु द्रव्यार्थिक दृष्टि से देखा जाय तो मोतियों की माला में अनुस्यूत सूत्र के समान समस्त पर्यायों में द्रव्य अनुस्यूत रहता है अतः वही नित्य द्रव्य कर्ता एवं भोक्ता है।[३८]

आत्मा के अकर्तृत्व का प्रतिपादन करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि निश्चय नय (शुद्ध निश्चय) से या पारमार्थिक दृष्टि से आत्मा को कर्त्ता मानना मिथ्या है, ऐसा मानने वाले अज्ञानी हैं।[३९] आत्मा किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है इसलिए कार्य नहीं है और किसी को उत्पन्न नहीं करता इसलिये कारण भी नहीं है। कर्म की अपेक्षा कर्ता व कर्ता की अपेक्षा कर्म उत्पन्न होते हैं—ऐसा नियम है। कर्ता व कर्म अन्य की अपेक्षा सिद्ध न

---

३८ समयसार, ३४५-३४८

३९ अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्ध स्वरसतः, समयसार, ३११, अमृतचन्द्र स्वामी, कलश, १९४

होकर स्वद्रव्य की अपेक्षा ही सिद्ध होते हैं, अतः आत्मा अकर्ता है।[४०] आत्मा जो स्वभाव से शुद्ध तथा देदीप्यमान चैतन्यस्वरूप ज्योति के द्वारा जिसने संसार के विस्तार रूप भवन को प्राप्त कर लिया है—अकर्ता है।[४१] अतः शुद्धनिश्चय नय की दृष्टि से आत्मा अकर्ता है। आत्मा में कर्तृत्वपन पर और आत्मद्रव्य के एकत्वाध्यास से होता है। अज्ञानी जीव भेद संवेदन शक्ति के तिरोहित हो जाने के कारण आत्मा को कर्ता समझता है। वह पर और आत्मा को एकरूप समझता है, इसी मिश्रित ज्ञान से आत्मा के अकर्तृत्व व एकस्वरूप विज्ञानघन से पथभ्रष्ट होकर आत्मा को कर्ता समझता है। आत्मा तो अनादि-घन निरन्तर समस्तरसों से भिन्न अत्यंत मधुर एक चैतन्य रस से परिपूर्ण है। कषायों के साथ आत्मा का विकल्प अज्ञान से होता है, जिसे आत्मा व कषायों का भेदज्ञान हो जाता है, वह ज्ञानी आत्मा सम्पूर्ण कर्तृभाव को त्याग देता है, वह नित्य उदासीन अवस्था को धारणकर केवल ज्ञायक रूप में स्थित रहता है और इसी से निर्विकल्पक अकृत, एक, विज्ञानघन होता हुआ अत्यन्त अकर्त्ता प्रतिभासता है।[४२] अज्ञानान्धकार से युक्त जो आत्मा को कर्ता मानते हैं, वे मोक्षके इच्छुक होते हुए भी मोक्ष को प्राप्त नहीं होते। अतः निश्चय नय या पारमार्थिक दृष्टि से कुन्दकुन्द आत्मा में कर्तृत्व नहीं मानते, वह तो आस, अरूप, अगंध सब प्रकार के लिंग आवृत्ति से रहित, अशब्द, अशरीरी, ज्ञायक स्वभाव एवं शुद्ध है।

आत्मा का भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व :

आचार्य कुन्दकुन्द के अनुसार व्यवहार नय की अपेक्षा से आत्मा शुभ-अशुभ कर्मों का कर्ता एवं उन कर्मफलों का भोक्ता है। जिस प्रकार व्यावहारिक दृष्टि या व्यवहार नय से आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्ता है उसी प्रकार वह पौद्गलिक कर्मजन्य फल, सुख-दुःख एवं बाह्य पदार्थों का भोक्ता है। आत्मा जब तक प्रकृति के निमित्त से विभिन्न पर्याय रूप उत्पाद एवं व्यय का परित्याग नहीं करता तबतक वह मिथ्यादृष्टि व असंयमी रहकर सुख-दुःख का उपयोग करता रहता है। अवधेय है कि जैन-दर्शन में आत्मा के भोक्तृत्व को सांख्य की तरह उपचार से भोक्तृत्व नहीं

---

४० समयसार, ३०८-३१

४१ वही, १९४

४२ एदेण दुसो कत्ता आदा णिच्छयविदूहिं परिकहदो।
एवं खलु जो जाणदि सो मुंचदि सव्वकत्तित्तं॥ समयसार, ९७

कहा गया है। सांख्यवादी पुरुष को उपचार से कर्मफलों का भोक्ता मानते हैं।[४३] आचार्य कुन्दकुन्द ऐसा न मानकर आत्मा को व्यावहारिक स्तर पर वास्तविक रूप से भोक्ता मानते हैं।[४४] सांख्यों के उपचार से भोक्ता कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि पुरुष भोक्ता नहीं है लेकिन बुद्धि में प्रतिबिम्बित सुख-दुःख की छाया पुरुष में पड़ने लगती है यही उसका भोग है। उनके अनुसार भोगक्रिया वस्तुतः बुद्धिगत है परन्तु बुद्धि के प्रतिसंवेदी पुरुष[४५] में भोग का उपचार होता है. जिस प्रकार स्फटिक मणि लालफूल के सान्निध्य के कारण लाल एवं पीले फूल के संसर्ग के कारण पीली दिखाई देती है[४६] एवं फूल के हट जाने पर अपने स्वच्छ स्वरूप में प्रतीत होने लगती है उसी प्रकार चेतन पुरुष बुद्धि में प्रतिफलित होता है। जैन दार्शनिक सांख्य के उक्त मत से सहमत नहीं हैं। चूँकि पुरुष अमूर्त है इसलिए एक तो उसका प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता है, दूसरे पुरुष का प्रतिबिम्ब बुद्धि में पड़ने से पुरुष को यदि भोक्ता माना जाय तो मुक्त पुरुष को भी भोक्ता मानना पड़ेगा क्योंकि उनका प्रतिबिम्ब भी बुद्धि में पड़ सकता है। यदि सांख्य मुक्त पुरुष को भोक्ता न स्वीकार करे तो तात्पर्यतः पुरुष ने अपना भोक्तृत्व स्वभाव छोड़ दिया है और ऐसा मानने पर आत्मा परिणामी हो जायेगा। अतः आत्मा उपचार रूप से भोक्ता नहीं बल्कि वह भोक्तृत्व के अर्थ में भोक्ता है, समयसार के अनुसार जीव का कर्म एवं कर्मफलादि के साथ निमित्त-नैमित्तिक रूपेण सम्बन्ध ही कर्ताकर्मभाव अथवा भोक्ता भोग्य व्यवहार है।[४७]

आत्मा के अभोक्तृत्व की व्याख्या करते हुए समयसार में आचार्य ने कहा है कि प्रकृति के स्वभाव में स्थित होकर ही कर्मफल का भोक्ता है इसके विपरीत ज्ञानी जीव उदीयमान कर्मफल का ज्ञाता होता है भोक्ता नहीं।[४८] वह अनेक प्रकार के मधुर, कटु, शुभाशुभ कर्मों के फल का ज्ञाता होते हुए

---

[४३] एतेन विशेषणाद-उपचरित वृत्या भोक्तारं चात्मानं मन्यमाना सांख्यानाम् निरासः—षड्दर्शनसमुच्चय टीका, कारिका, ४६

[४४] पंचास्तिकाय तत्त्वदीपिका टीका, ६८; पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, १०

[४५] व्यासभाष्य, पृ० २१४

[४६] कुसुमवच्यमणिः, सू० २१३५

[४७] समयसार, ३४५-३४८

[४८] भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्व वच्चितः।
अज्ञानादेव भोक्तायं तदभावाद्वेदकः॥ समयसार, आत्म० टी०, ६६

भी अभोक्ता कहलाता है। जिस प्रकार नेत्र विभिन्न पदार्थों को देखता मात्र है, उनका कर्ता भोक्ता नहीं होता उसी प्रकार आत्मा बंध तथा मोक्ष को कर्मोदय एवं निर्जरा को जानता मात्र है, उनका कर्ता भोक्ता नहीं होता।[४९] पुद्गल अन्य कर्मों का भोक्ता होते हुये भी ज्ञानी आत्मा उसी प्रकार कर्मों या तज्जन्य फलों से नहीं बंधता है जिस प्रकार वैद्य विष का उपभोग करता हुआ भी मरण को प्राप्त नहीं होता।[५०]

इस प्रकार हम देखते हैं कि समयसार में आचार्य कुन्दकुन्द ने अशुद्ध निश्चय एवं व्यवहारनय की दृष्टि से आत्मा को कर्ता-भोक्ता एवं शुद्धनिश्चय नय की दृष्टि से अकर्ता व अभोक्ता कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य का मुख्य प्रयोजन संसारी जीवों के सम्मुख आत्मा के शुद्धस्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत करना था जिसके द्वारा जीव अनन्तगुणात्मक विशुद्ध आत्मा के स्वरूप को जान सके। इसीलिए उन्होंने आत्मस्वरूप को समझाने के लिये निश्चय एवं व्यवहार दोनों नय का सहारा लिया। जहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ने व्यवहार नय के माध्यम से आत्मा की संसारी अवस्था का निरूपण किया है वहीं निश्चय नय के माध्यम से आत्मद्रव्य को पूर्णतः विशुद्ध तथा समस्त पर पदार्थों से पूर्णतः असम्बद्ध निर्दिष्ट किया है। शुद्धावस्था में आत्मा स्वचतुष्ट्य में लीन किसी कार्य का कर्ता-भोक्ता न होकर ज्ञाता-द्रष्टा मात्र होता है। व्यवहार नय के माध्यम से कुन्दकुन्दाचार्य का उद्देश्य यह दर्शाना है कि यद्यपि संसारी[५१] आत्मा की अशुद्धावस्था जिसमें वह समस्त कर्मों का कर्ता-भोक्ता है, एक वास्तविकता है लेकिन यह आत्मा के वास्तविक स्वरूप के प्रतिकूल है, क्योंकि यह आगन्तुक है इसीलिए हेय भी है। परन्तु उस विशुद्धावस्था को प्राप्त करने के लिये आत्मा की अशुद्धावस्था का ज्ञान उतना ही आवश्यक है जितना शुद्धावस्था का। उन्होंने निश्चय-नय द्वारा आत्मा की शुद्धावस्था को उपादेय बताया है। पद्मप्रभु ने नय विवक्षा से आत्मा के कर्तृत्व-भोक्तृत्व भाव को स्पष्ट करते हुये कहा है कि 'निकटवर्ती अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय की

---

४९ समयसार, ३१४-२०

५० वही, १९५

५१ निश्चय नय की दृष्टि से आत्मा के दो ही भेद हैं—मुक्त एवं संसारी। इन दोनों भेदों में ही भव्य, अभव्य, अशुभोपयोगी, शुद्धोपयोगी सबका समावेश हो जाता है, मोक्षपाहुड ५ में आचार्य ने बहिरात्मा, अन्तरात्मा एवं परमात्मा तीन भेद किए हैं।

अपेक्षा आत्मा द्रव्य कर्म का कर्ता व तज्जन्यफलोपभोक्ता है। अशुद्ध निश्चय की अपेक्षा समस्त मोह, राग-द्वेषरूप भावकर्मों का कर्ता है तथा उन्हीं का भोक्ता है। उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से वह घटपटादि का कर्ता व भोक्ता है। निश्चय नय की दृष्टि से वह कर्ता-कर्म से परे एक मात्र ज्ञायक भाव एवं एक टङ्कोत्कीर्ण है एवं शुद्ध है। वे आचार्य शंकर की तरह आत्मा की अशुद्धावस्था को मिथ्या न मानते हुये आत्मा की संसारी अवस्था को एक वास्तविकता के रूप में स्वीकार करने से इन्कार नहीं करते। वे आत्मा के ज्ञाता द्रष्टापक्ष पर बल देते समय सांख्य के निकट व शुद्ध निश्चय नय पर बल देते समय वेदान्त के निकट खड़े दिखाई देते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द की व्यापक दृष्टि जैनदर्शन की परिधि में रहकर भी जैनेतर दर्शनों की परिधि को छू लेती है जो इस बात की सूचक है कि 'एक सत् विप्राबहुधावदन्ति' एवं जिज्ञासु केवल-मयं विदुषां विवादः की घोषणाएँ सत्य हैं।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

असंख्य सैन्य से आकाश और धरती को आच्छादित कर उद्वेलित समुद्र की तरह रावण अस्खलित गति से अग्रसर होने लगा। आगे जाने पर विंध्य पर्वत से अवतरित चतुरा भामिनी-सी रेवा नदी को देखा। उस कल-कल नादिनी के तट पर हंस पंक्तियाँ इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो ये उस तन्वंगी की कटिमेखला हो, विशाल तट भूमि उसके नितम्ब हों। उसकी उत्ताल उर्मिमालाओं को देखकर लगता जैसे उसकी केशराशि हवा में आन्दोलित हो रही हो। उसमें रह-रह कर मछलियाँ उछल-उछल कर ऊपर आ रही थी जिसे देखकर लग रहा था कि वह कामिनी कटाक्ष कर रही है। ऐसी शोभा धारिणी रेवा नदी के तट पर रावण ने स्नान कर दो उज्वल वस्त्र पहने और मन को स्थिर कर आसन पर बैठ गया। सम्मुख रखी मणिमय चौकी पर अर्हत् बिम्ब स्थापित कर उसने रेवा जल से उसको स्नान करवाया और रेवा में ही विकसित कमल से पूजा कर ध्यान में लीन हो गया। उसी समय अकस्मात् समुद्र में ज्वार आने की तरह रेवा नदी में बाढ़ आ गया। एक मुट्ठी घास की तरह बड़े-बड़े वृक्ष समूह को उखाड़ कर रेवा का जल तटोंको प्लावित करने लगा। ऊर्द्धोत्क्षिप्त तरंगे तट पर बंधी नौकाओं को इस प्रकार पछाड़ने लगीं जिस प्रकार मुक्ता के लिए सीपों को पछाड़ा जाता है पेटू के पेट को जैसे आहार भर देता है उसी प्रकार तट पर बने गहन गह्वरोंको रेवा के जल ने भर दिया। पूर्णिमा की ज्योत्स्ना जिस प्रकार ज्यतिष्कों के विमान को आवृत कर देती है उसी भाँति रेवा के जलने अपने मध्यस्थित उन्नत भूमि को आवृत्त कर दिया। चक्रवात वायु चक्रवेग से जिस प्रकार वृक्ष के पत्रों को आकाश में उछालती है उसी प्रकार तरंगों के उच्छ्वास छोटी-छोटी मछलियों को आकाश में उछालने लगे। वही फेन और कर्दममय जल महावेग से आकर रावण की समस्त पूजा द्रव्य को बहाकर ले गया। शिरस्च्छेद से अधिक दुःखदायी पूजा द्रव्य के प्रवाहित हो जाने से रावण क्रोधान्वित होकर बोल उठा 'अकारण ही कौन मेरा शत्रु बना है जो मेरी अर्हत् पूजा में विघ्न डालने के लिए ही इस दुर्निवार जलराशि को फैला दिया है। क्या वह सुरासुर या विद्याधर या कोई प्रमुख मिथ्या दृष्टि वाला है?'

तब एक विद्याधर रावण के निकट आया और बोला, 'देव, यहाँ से कुछ दूरी पर माहिस्मती नामक एक नगरी है। वहाँ सूर्य से तेजस्वी एक हजार राजाओं द्वारा सेवित सहस्रांशु नामक एक महापराक्रमी राजा राज्य करते हैं। उन्होंने जल क्रीड़ा का आनन्द लेने के लिए रेवा के जल को हाथ से रोक लिया था। शक्तिशाली के लिये असाध्य क्या है? हस्ती जैसे हस्तिनी यूथ लेकर जल क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार वे अपनी एक हजार रानियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे। उनके एक लाख अंग रक्षक अस्त्र और कवच धारण कर नदी के दोनों तटों की रक्षा कर रहे हैं। अपरिमित पराक्रमी उन राजा का शौर्य ऐसा अपूर्व और अदृष्टपूर्व है कि उन्हे किसी रक्षक की आवश्यकता नहीं होती। वे सैनिक तो केवल शोभावृद्धि के लिए या दर्शक रूप में अवस्थित है।

'जलक्रीड़ा के समय जब वे पराक्रमी राजा बाहु संचालन कर रहे थे उसके आघात से जल देवता क्रुद्ध हो उठे थे और जलजन्तु गण भय से भाग छूटे थे। हजार रानियों के साथ जलक्रीड़ा करते उन्होंने अब जल को छोड़ दिया हैं। इसी लिए वह अवरूद्ध जल भरती और आकाश को प्लावित कर बाढ़ की तरह आकर आपके पूजा द्रव्य को प्लावित कर दिया है। वह देखिए राजाकी पत्नियों के माल्यादि रेवा के जलमें प्रवाहित हो रहे है। यह मेरे कथन की सत्यता का प्रथम निदर्शन है। रानियों के अंगराग मिल जाने से जल कर्दम युक्त हो गया है। हे वीराग्रण्य, देखिए, देखिए।'

अग्नि में घृताहुति पड़ने से अग्नि जैसे दुगनी प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार विद्याधर का कथन सुनकर रावण की क्रोधाग्नि दुगनी प्रज्वलित हो गयी। वह बोल उठा—"सैनिकगण, मरणाकांक्षी उस राजा ने काजल से जैसे देवदूष्य वस्त्र दूषित हो जाता है उसी प्रकार स्व अंगों से रेवा जल को दूषित कर मेरी देवपूजा को दूषित कर दिया। अतः तुमलोग जाओ और धीवर जैसे मछली पकड़ लाता है उसी प्रकार उस वीर और दम्भी राजा को पकड़कर मेरे सन्मुख उपस्थित करो।'

रावण की यह आज्ञा सुनते ही राक्षस वीर नदी तट के किनारे-किनारे दौड़ने लगे। लगा जैसे रेवा का प्रवाह विपरीत प्रवाहित हो रहा है। वहाँ पहुँचते ही नवागत हाथी के साथ जैसे हाथी युद्ध करते हैं वैसे ही सहस्रांशु के सैनिक राक्षस सेना के साथ युद्ध करने लगे। मेघ जैसे शिला वरसा कर शरभ को कष्ट देता है उसी प्रकार राक्षस वीर आकाश में स्थित होकर विद्या द्वारा उन्हें विमोहित कर कष्ट देने लगे। अपने सैनिकों को पीड़ित होते देख क्रुद्ध

सहस्रांशु के ओष्ठ काँपने लगे । उसने हाथों के इशारे से अपनी अन्तःपुरिकाओं को आश्वस्त कर आकाश गंगा से जैसे ऐरावत निकलता है उसी प्रकार रेवा नदी से निकले और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर वाण वर्षा करने लगा । उस महावाहु की वाण वर्षा से राक्षसगण तीव्र हवा से जैसे घास-पूस उड़ जाता है उसी प्रकार इधर उधर पछाड़ खा-खाकर गिरने लगे । युद्ध से स्व-सैन्य को परान्मुख होते देखकर रावण क्रुद्ध होकर बाण वर्षा करता हुआ सहस्रांशु के सन्मुख आया । दोनों ही क्रुद्ध थे, दोनों ही शक्तिशाली थे, दोनों ही उग्र बने बहुत देर तक युद्ध करते रहे । अन्ततः भुजबल से सहस्रांशु को पराजित करना असम्भव देख रावण ने विद्या द्वारा उसे विमोहित कर हाथी की भाँति पकड़ लिया । उस महावीर को पराजित कर देने पर भी स्वयं ही जैसे पराजित हुआ हो इस प्रकार रावण उसकी प्रशंसा करते हुए उसे अपने स्कन्धावार में ले गया ।

रावण हर्षित होकर जैसे ही सभा में बैठा वैसे ही शतवाहु नामक एक चारण मुनि वहाँ उपस्थिति हुए । मेघ के उदित होने से मयूर जैसे उसका स्वागत करता है उसी प्रकार रावण तत्क्षण सिंहासन से नीचे उतर कर मणिमय पादुका परित्याग कर उनका स्वागत किया और वे अरिहंत के गणधर हों इस प्रकार उनके चरणों में गिरकर पंचांगो से भूमिस्पर्श पूर्वक उन्हें प्रणाम किया । तदुपरान्त मुनि को आसन देकर उसी आसन पर बैठाया और पुनः उन्हें प्रणाम कर स्वयं जमीन पर बैठ गया । मूर्तिमान विश्वास की तरह और जगत् को अश्वासित करने के लिए जो बन्धु तुल्य हैं ऐसे उन मुनि ने रावण को समस्त कल्याण की जननी रूप धर्म लाभ रूपी आशीर्वाद दिया तब रावण ने करबद्ध होकर उनसे वहाँ आने का कारण पूछा । प्रत्युत्तर में मुनि बोले—

'मैं माहिस्मती का राजा था । मेरा नाम शतवाहु था । सिंह जैसे अग्नि से डर जाता है उसी प्रकार संसार भय से भीत होकर पुत्र सहस्रांशु को राज्य देकर मोक्षमार्ग पर जाने के लिए रथतुल्य यह चारित्र ग्रहण किया ।'

मुनि के इतना कहते ही रावण ने माथा नीचा कर सहस्रांशु की ओर देखते हुए पूछा, 'क्या ये महावाहु ही आपके पुत्र हैं ?'

मुनि बोले, 'हाँ' ।

तब रावण कहने लगा, 'मैं दिग्विजय के लिए निकलकर रेवा तट पर आया और वहाँ छावनी डाली । जब मैं खिला हुआ कमल लेकर प्रभु की पूजा कर एकाग्र चित्त से ध्यान करने लगा तभी आपके पुत्र ने स्व-शरीर का दूषित जल छोड़कर मेरी पूजा भंग कर दी । इसीलिए क्रुद्ध होकर

मैं उन्हें पकड़कर लाया हूँ। किन्तु अब मैं समझ गया कि यह कार्य उन्होंने अनजान में किया है कारण आपके पुत्र जान बूझ कर (जिससे अर्हत् का असम्मान हो) ऐसा काम नहीं कर सकते।'

ऐसा कहकर रावण ने मुनि को प्रणाम किया और सहस्रांशु को समीप बुलवाया। उसने लज्जा से माथा नीचे कर मुनि-पिता को प्रणाम किया। तब रावण उससे बोला, 'हे महाबाहु, आज से आप मेरे भाई हैं। मुनि शतबाहु जिस प्रकार आपके पिता हैं उसी प्रकार मेरे भी पिता हैं। अतः आइए स्व राज्य का पालन करिए। मैं आपको और भी भूमि दे रहा हूँ। हमलोग तीन भाई थे। आज से हम चार भाई होकर समान रूप से राजलक्ष्मी का भोग करेंगे।' ऐसा कहकर रावण ने उन्हें मुक्त कर दिया।

मुक्त होकर सहस्रांशु बोला, 'इस देह और राज्य पर मेरी जरा भी अभिरुचि नहीं है। मेरे पिता ने संसार नाशकारी जो व्रत ग्रहण किया है उसी व्रत को मैं भी ग्रहण करूँगा। साधुओं के लिए यही मार्ग निर्वाण प्रदान कारी है।'

ऐसा कहकर अपने पुत्र को रावण के हाथों सौंपकर चरम शरीरी सहस्रांशु ने पिता से दीक्षा ग्रहण कर ली और यह समाचार अपने मित्र अयोध्या के राजा अनरण्य को भी भेज दी। अनरण्य को तब स्मरण हो आया कि हमने यह प्रतिज्ञा की थी कि हम साथ दीक्षा लेंगे। अतः वह भी अपने पुत्र दशरथ को सिंहासन पर बैठाकर दीक्षित हो गया।

रावण ने शतबाहु और सहस्रांशु मुनि को वन्दन कर सहस्रांशु के पुत्र को माहिस्मती के सिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं दिग्विजय के लिए आकाश पथ से रवाना हो गया। उसी समय लगुड़ प्रहार से जर्जरित नारद 'यह अन्याय है, यह अन्याय है' कहते हुए उसके निकट आकर बोले—

'राजन्, राजपुर नगर में मरूत् नामक एक राजा है। वह दुष्ट ब्राह्मणों के सम्पर्क में आकर मिथ्यादृष्टि बना यज्ञ करता रहा है। उस यज्ञ में होम करने के लिए ब्राह्मणगण व्याध की तरह निरीह पशुओं को बाँधकर ला रहे हैं। उनकी करूणा भरी चीत्कार से दयार्द्र होकर मैं आकाश से नीचे उतरा और ब्राह्मणों से घिरे मरूत् राजा के पास गया। एवं उनसे कहा—'यह आप क्या कर रहे हैं?' राजा ने उत्तर दिया—'मैं ब्राह्मणो के आदेशानुसार यज्ञ कर रहा हूँ। देवों की तृप्ति के लिए अन्तर्वेदी पर पशु होम करना स्वर्ग और धर्म का कारण है। इसलिए आज मैं इन पशुओं को होम कर यज्ञ पूर्ण करूँगा।' तब मैं उनसे बोला, 'यह शरीर ही वेदी है, आत्मा यजमान है, तप अग्नि है,

ज्ञान घृत है, कर्म समिध, क्रोधादि कषाय पशु, सत्य यज्ञ स्तम्भ, समस्त प्राणियों की रक्षा दक्षिणा है एवं ज्ञान दर्शन चारित्र ये तीन रत्न तीन देव हैं (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर)—यही वेद कथित यज्ञ यदि योग विशेष से किया जाए तो वह मुक्ति का साधन है। जो राक्षस की तरह बकरा आदि जीवों की हिंसा करते हैं वे मृत्यु के पश्चात् घोर नरक में जाते हैं और चिरकाल तक दुःख भोगते हैं। हे राजन्, आपने उत्तम कुल में जन्म ग्रहण किया है। बुद्धिमान और ऋद्धिशाली हैं। इसलिए तुरन्त इस पाप कर्म से विरत होइए। प्राणी वध से ही यदि स्वर्ग मिल सकता तब तो अल्प दिनोंमें ही संसार शून्य हो जाएगा।'

'मेरी बात सुनकर समस्त ब्राह्मण क्रोधाग्नि से उद्दीप्त हो उठे और काष्ठ उठाकर मुझे मारने लगे। मैं भी वहाँ से भागकर नदी के प्रवाह में पड़ा मनुष्य द्वीप को प्राप्त कर जैसे शान्त हो जाता है उसी प्रकार आपके पास आकर शान्त हो गया हूं। हे राजन्, आपका सान्निध्य पाकर मैं तो रक्षित हो गया हूँ किन्तु उन निरीह पशुओं की यज्ञ कामी उन नर-पशुओं के हाथों से रक्षा कीजिए।

[क्रमशः

संकलन

।। महावीर जयन्ती के दिन महावीर बनने का संकल्प करें ।।

जैन धर्म का प्रचार करने के लिए प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये खर्च किये जाते हैं। बड़े-बड़े आयोजन होते हैं। ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते और बैनरों पर सुवाक्य लिखाकर प्रचार किया जाता है। यह सब निरर्थक नहीं है। इनका उपयोग है लेकिन इनके भी पहले जैन कहलाने वालों का स्वयं का जीवन जैनत्व की सुरभि से सुरभित होना जरूरी है। जो प्रचार आचार के द्वारा होता वही स्थायी रहता है। दूसरों को हम उपदेश दें और स्वयं अपने जीवन में उन उपदेशों को स्थान नहीं दें तो हम उपदेश के अधिकारी नहीं हो सकते।

महावीर जयंती के पावन प्रसंग पर तीर्थंकर श्री महावीर के जीवन और उपदेशों को याद करें। उनके जीवन से प्रेरणा लें कि कितनी समता, सहनशीलता और परिषहों में भी वे अविचल / अडिग रहे। हम थोड़ी कठिनाई में ही घबड़ा जाते हैं, विचार भेद होते ही शत्रुता एवं बैर बांध लेते हैं। धर्म के नाम पर कषायों को बढ़ाते हैं। स्वयं को महान और दूसरे को तुच्छ समझकर निन्दा आलोचना द्वारा कर्मों से भारी बनते हैं। महान व्यक्तियों की जयंतियाँ केवल उनकी जय जयकार तक ही सीमित न रखकर जयंती के उपलक्ष में उनके गुणों में से एक भी गुण जीवन में उतारने का संकल्प करना जयन्ती मनाने का सही उद्देश्य है।

—चंदनमल 'चाँद'

जैन जगत, अप्रैल १९९२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

अनेकान्त ।। जनवरी-मार्च १९९२

इस अंक में है 'कर्नाटक में जैन धर्म' (राजमल जैन), 'अपभ्रंश भाषा के प्रमुख जैन साहित्यकार : एक सर्वेक्षण' (जिनमती जैन), 'जैन धर्म एवं संस्कृति के संरक्षण तथा विकास में तत्कालीन राजघरानों का योगदान' (डा० कमलेश जैन), 'साह श्री जीवराज पापड़ीवाल' (कुन्दन लाल जैन), '१७वीं शताब्दी के महान् कवि कविवर बुलाकीदास : एक परिचय' (ऊषा जैन), 'भट्टारक हर्षकीर्ति के पद' (डा० गंगाराम गर्ग), 'पुष्पदन्तकृत जसहर चरिउ में दार्शनिक समीक्षा' (जिनेन्द्र जैन), 'आचार्य श्री विद्यासागर का रस विषयक मन्तव्य' (डा० रमेशचन्द्र जैन)।

कुशल निर्देश ।। अप्रैल १९९२

इस अंक में है 'योगीन्द्र युगप्रधान सद्गुरु श्री सहजानन्द घनजी महाराज का पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'सम्यक चिन्तन की एक झलक' (मोहनलाल गोलच्छा), 'श्वे० दि० तीर्थों की एक सहयात्रा' (भँवरलाल नाहटा), 'परम शासन प्रभावक श्री अभयदेव सूरि' (आचार्य श्री विजय पद्म सूरि, अनु० भँवरलाल नाहटा), 'जैन धर्म के सम्बन्ध में विद्वानों के अभिप्राय' (मानकचन्द भंडारी)।

जैन जर्नल ।। जनवरी १९९२

इस अंक में है 'Light on Religion and Philosophy from the Early Jaina Inscriptions from Rajasthan (upto 1200 A. D.)' (Dr. Krishna Gopal Sharma), 'Y-Sruti in Prakrit' (Dr. Satya Ranjan Banerjee), 'The Relevance of Nompies in Karnataka Jainism' (Vasantha Kumari), 'Jaina Concept of Memory' (Dr. Mohanlal Mehta), 'The Jaina View on Darknes' (Himanshu Shekhar Acharya).

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and Govt. Order Suppliers.

Also Authorised Dealers of Pace-setter and Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330

Vol. XVI No. 1 TITTHAYARA May 1992

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२